International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 441-442

उत्तर भारत में एन.बी.पी.डब्ल्यू कालीन समाजिक एवं आर्थिक स्थिति

गुंजन बैस
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ0 राम मनोहर लोहिया, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई0पू0 के पश्चात् घनी वनस्पतियों से आच्छादित मध्य गंगा के तटवर्ती क्षेत्रों को बस्ती तथा कृषि के उपयुक्त बनाने में लोहे के उपकरणों की निर्णायक भूमिका रही है।[1] अब कृषि योग्य भूमि के वर्गीकरण की विवेचना उपर्युक्त होगी क्योंकि जब कृषि की महत्ता इतनी अधिक बढ़ चुकी थी तो उसके वर्गीकरण एवं उसके प्रकारों पर भी ध्यान दिया जाता रहा होगा। पालिविनय के एक दृष्टान्त में 'जाता पथवी' और 'अजाता पथवी' यानि उपजाऊ और अनुपजाऊ भूमि के रूप में वर्गीकरण प्राप्त होता है। खिल का अभिप्राय उस भूमि से है, जिसमें पहले खेती होती थी। और अप्रहत से अभिप्राय उस भूमि से है जिसमें कभी जुताई नहीं हुयी।[2] खेतों के आकार प्रकार सुविधानुसार निर्धारित किए जाते रहे होगे। उन पर मेंड बांधी जाती थी। इससे वहॉ का सीमांकन आसान हो जाता रहा होगा वहीं सिचाई की सुविधा भी बढ़ जाती रही होगा। उपरोक्त तथ्यों के अवलोकन से यह अनुमानित है। कि कृषि योग्य भूमि छोटे–छोटे में बंटी रही होगी क्योंकि आज की ही तरह उस सयम भी यही सुविधाजनक रही होगी।[3]

जुताई के लिए हल का प्रयोग किया जाता था। वैदिक काल में हल के लिए लांगल शब्द का प्रयोग होता था।[4] पालि बौद्ध ग्रन्थों में हल के लिए नंगल शब्द का प्रयोग शायद वैदिक लांगल की ही अनुंगूज हो। हल ही फाल निश्चित ही लोहे की बनती रही होगी। लोहे के हल के फाल के विकल्प के तौर पर 'कुद्याता' अथवा 'फावड़ा' भी प्रयुक्त होता रहा होग।[5] खेत जोतने के क्रम में हल के द्वारा धरती पर पड़ी लकीरों 'हराई' के लिए 'सीता' शब्द का व्यवहार होता था। खानाबदोशी जीवन से परिवर्तित एक व्यवस्थित जीवन निश्चित रूप से एक आर्थिक क्रान्ति का परिणाम है। यह कुछ निश्चित खाद्य उत्पादन पर आधारित था जैसे गेहूँ, जौ और चावल[6], कृषि उत्पादों में धान के अतिरिक्त जौ बाजरा, चना, मटर, मूँग, उर्द शालि, ब्रीहि, तण्डुल, ईख इत्यादि उपजाया जाता था। आम, सेब, जम्बूक, अंजीर, अंगूर, केला, खजूर जैसे फल उगाए जाते थे। तिल का प्रयोग कई कामों में होता था। खाद्य व्यंजन बनाने एवं तिल का तेल निकालने और जौ और चावल के साथ धार्मिक कार्यों में तिल का उपयोग[7] उसे महत्वपूर्ण फसल बना देता है।

मौर्य युग कृषि की अभूतपूर्व उन्नति एवं तकनीकी निवेश के लिए जाना जाता है। कौटिल्य परती भूमि और वन[8] को भी खेती के योग्य बनाने की सम्भावनाओं को खोजते हैं। कौटिल्य तीन तरह की फसलों का वितरण देते हैं। पहली कोटि की फसलें शालि, ब्रीहि, कोदो, तिल, कबुनी, दारद, वरम इत्यादि वर्षा के प्रारम्भ काल में, दूसरी कोटि की फसलें मूँग, उडद और शिम्ब वर्षा के मध्य तथा, तीसरी कोटि की फसलें कुशुम्भ, मसूर, कुलथी, जौ, गेहूँ, मटर, असली और सरसों वर्षा अन्त में। कृषि कार्यों के निमित्त नियुक्त पदाधिकारी 'सीताध्यक्ष' नाम से संबोधित था।[9]

सिंचाई की व्यवस्था कृषि से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण विषय है। धर्मसूत्रों में राजा और प्रजा दोनों से तालाब एवं कुएँ बनवाए जाने की अपेक्षा की गई है। पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप 600–200 ई0पू0 के पकी मिट्टी के अनेक छल्लेदार कुएँ रिंग वेल प्रकाश में आये हैं। ऐसे कुएँ हस्तिनापुर, पुराना किला, रोपड़, उज्जैन, मथुरा, और नासिक में प्राप्त होने के साथ ही पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकांश उत्खनित ऐतिहासिक स्थलों में पाए गए हैं।[10]

मौर्य काल में सिंचाई कर (उद्रक भाग) भी लिया जाता था। सिंचाई हेतु सरकारी प्रयासों की अभिलेखीय पुष्टि भी होती है। रूद्र दामन के जूनागढ़ अभिलेख के माध्यम से यह तथ्य सामने आता है कि मौर्य शासकों चन्द्रगुप्त और अशोक के राजत्वकाल में उनके प्रान्तीय प्रशासकों द्वारा सुदर्शन झील का निर्माण एवं मरम्मत कराया गया।[11] सिंचाई की इतनी उत्तम व्यवस्था के बाद भी आलोच्य कालावधि में अकाल जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती थी। जैन कथाओं में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल में अकाल का जिक्र आया है। सौहगौरा और महास्थान के अभिलेख भी अकालग्रस्त गंगाघाटी में जन सहायता जिक्र करते है।

आलोच्य कालवधि की अर्थव्यवस्था के अन्य महत्वपूर्ण अवयव पशुपालन का विश्लेषण भी समीचीन प्रतीत हो रहा है। पशुपालन पर और ध्यान दिया जाने लगा था, क्योंकि कृषि कार्य में पशुओं की उपयोगिता असंदिग्ध थी। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन जनजीवन में विविध पशु–पक्षियों का महत्वपूर्ण स्थान था एवं उनके बारे में विस्तृत जानकारी भी थी। अशोक ने भी अपने राजाज्ञाओं द्वारा व्यर्थ की पशु पक्षियों की हिंसा को कम करने का प्रयत्न किया।[12]

पातलू पशुओं में गाय को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था। क्योंकि खाद्य पदार्थ के रूप में दूध का महत्वपूर्ण स्थान हो था ही, इसकी संततियाँ बैलों के रूप में कृषि कार्य की आधारशिला थी। पालि तथा वैदिक ग्रन्थों में गोहत्या के अनेक संदर्भों को देखते हुए इसे आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ और स्वागत योग्य कदम माना जाना चाहिए। इनका मांस भी विशिष्ट अतिथियों को खिलाए जाने के प्रमाण प्राप्त होते है।[13] पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप सोनपुर, खजुरी, नरहन, आगियावीर, झूँसी और अन्य कई स्थानों में गाय, बैल और अन्य पशुओं की हड्डियाँ मिली है जिन पर काटने के निशान हैं।[14]

पालि विनय में उत्तरापथ से घोड़ों के व्यापार के बारे में जानकारी मिलती है। घोड़ों के साथ–साथ हाथी भी सैन्यबल का महत्वपूर्ण हिस्सा था।[15] वस्तुतः बौद्धों की शिक्षाओं के फलस्वरूप पशुपालन के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदला। ब्राह्मण विचाराधारा में धर्म के कृत्य, कर्मकाण्ड में पशुबलि की प्रथा तथा जनजातियों की आखेटक वृत्ति दोनों ही कृषि के लिए पशुसंरक्षण के विपरीत थी।

राजस्व व्यवस्था का मेरूदंड भू–राजस्व व्यवस्था थी। अतएव विशेष रूप से भू–राजस्व व्यवस्था पर विश्लेषण उपर्युक्त एवं तर्कसंगत

प्रतीत होता है। अब अधिशेष औरा उपभोग की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था थी। परिजनों के द्वारा नहीं, विधिवत नियुक्त अधिकारियों द्वारा राजस्व वसूली होती थी। अब जनजातीय समाज नहीं रह गया था, व्यवसायिक समाज हो गया था।

पालि बौद्ध साहित्य में 'बलि' तथा 'भाग' शब्द आते हैं जो उपज के एक हिस्से को अभिव्यक्त करते हैं। भाग साधारणतया उपज का छठा भाग होता था किन्तु यह सदा या सर्वत्र छठा भाग नहीं रहा। भूमि कर की कोई एक निश्चित दर नहीं थी और सामान्य रूप से भूमि के वर्गीकरण एवं मूल्यांकन के बाद ही कोई कर निर्धारित किया जाता रहा होगा

मौर्य युगीन भू–व्यवस्था में कराधान की बड़ी सुनियोजित पद्धति के दर्शन होते हैं। अर्थशास्त्र से यह अभिज्ञात होता है कि 'गोप' नामक अधिकारी गांवों की समस्त भूमि का लेखा जोखा रखता था।[16] उसके बाद समाहर्ता गांवों में निरीक्षकों के द्वारा एक बार फिर 'सर्वे' कराता था। उसी के आधार पर करारोपण या कर मुक्ति निश्चित होती थी।

कौटिल्य ने यह व्यवस्था दी है कि दुर्भिक्ष के समय राजा को भू–राजस्व माफ कर देना चाहिए।[17] राजा उपज के भाग के अतिरिक्त प्रजा से लेता था। दूसरा 'हिरण्य' जो फसलों पर नकदी के रूप में लिया जाता था। हिरण्य कर कुछ विशिष्ट फसलों पर लगाया जाता था, और नकद धन के रूप में वसूल किया जाता था।

ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में भारतीय लोहे से इस्पात बनाना भली भांति जानते थे किन्तु वे इसे कड़ा करना नही जानते थे।[18] पाण्डुराजाधिवि से लौह धातुमल तथा धातु शोधन में प्रयुक्त भट्टियाँ भी मिली हैं। कौशाम्बी तथा नरहन, सोनपुर आदि पुरास्थलों से कुल्हाड़ी, बसुला, चाकू, छुरी, काँटे, हँसिया, आदि अनके लौह उपकरण मिले हैं, जो उत्तर काली पालिशदार भाँड वाले चरण के आरम्भिक स्तरों के हैं।[19]

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में सोने को साफ करने, उस पर पालिश करने की विधि और चाँदी को भी साफ करने की विधि[20] वर्णित है। सुनार सोने और चाँदी की मुद्राएँ भी बनाते थे, जिनकी मजदूरी अलग–अलग बताई गई है।

तांबे और कांसे का बहुविध प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। पुरातात्विक उत्खननों से ताँबे के प्रचुर प्रमाण प्राप्त हुए हैं। बिहार के रामपुरवा से प्राप्त अशोक के स्तम्भ में आकारशिला को जोड़ने के लिए छल्ला ताँबे को ढाल कर बनाया गया प्रतीत होता है।[21] पेरिप्लस में तांबे के निर्यात का विवरण आया है। मौर्य शासकों द्वारा चालये गये गौण ताम्र मुद्राओं के सम्बन्ध में कह सकते हैं कि वे वर्गाकार या आयताकार ढले हुए सिक्के जिन पर विशिष्ट चिन्ह 'पहाड़ी और अर्धचन्द्र' और दबी हुई एक दूसरे को काटती हुई दो रेखाएँ प्रदर्शित होती है।

सामान्य जन जीवन लकड़ी के प्रयोग पर पूरी तरह आश्रित था। मौर्यकाल में यह शिल्प कौशल की पूर्णयता की सीमा तक पहुँच चुका था। पटना के पास खुदाई में मिले रहस्यपूर्ण लकड़ी के मंचो के रूप में इसका प्रमाण प्राप्त हुआ है।

इसके अतिरिक्त भी अनेक शिल्पों एवं उद्योग का पर्याप्त विकास परिलक्षित होता है जैसे इत्र बनाना। हाथी दाँत से बनी विभिन्न सामग्रियाँ उच्च तबके में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।[22] एक और ऐसा उद्योग है जिसमें भारतवासियों को विशिष्टता प्राप्त थी, वह है संग तराशी। संग–तराश कैसी अपूर्व कारीगरी करते थे, इसका नमूना अशोक के शासनकाल के आश्चर्यजनक स्तंभों में मिलता है। पत्थर के बने बर्तन बहुतायत से प्रयोग में लाये जाते थे। तालाबों की दीवारों में पत्थर लगाने की कला भी विकसित हो चुकी थी। शीशे के बर्तनों के भी प्रचुर प्रयोग के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। सिरकप (तक्षशिला) से प्राप्त सीसे की वस्तुओं का निर्माण भी बड़ी उच्च विधि प्रस्तुत करती है।

मृदभाण्ड तो आम जनता के प्रिय पात्र थे। उत्तरी काले ओपदार मृदभाण्ड आलोच्य कालवधि से जोड़े जाते है। पुरातात्विक उत्खननों द्वारा उत्तर प्रदेश में हस्तिनापुर, कौशाम्बी, झूँसी, अगियावीर, और श्रावस्ती, राजाघाट, सोनपुर आदि उत्खनित अधिकांश पुरास्थलों से एन0बी0पी0 के नमूने प्राप्त हुए हैं जिन पर चित्रकारी मिलती है। बौद्ध साहित्य से विदित होता है कि कुलाल लोग अपना समान गदहों पर लादकर अन्य नगर में ले जा कर बेचते थे।

उपसंहार

हम देख चुके हैं कि आलोच्य कालावधि में उपभोग की अर्थव्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। अतएव वस्त्र उद्योग का फलना फूलना स्वाभाविक था।

संदर्भ

1. कोसांबी, डी0डी0, 1956, इन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री, बंबई, 1956.
2. मैटी, सचीन्द्र कुमार, 1957, इकोनोमिक लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया इन दा गुप्ता पीरियड, पृ0 35
3. मिश्र, जी0एस0पी0, 1983, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ0 185–86.
4. मैक्डानेल तथा कीथ, 1958, वैदिक इंडेक्स, जि0 2, पृ. 31
5. बौधायन धर्मसूत्र, 3.2.5.6.
6. सिंह, पुरुषोत्तम, 2010, आर्कियोलॉजी ऑफ गंगा प्लान, पृ0 168
7. शर्मा, रामशरण, 1990, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ0 146
8. अर्थशास्त्र 2.1 स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहु : शल्यवतो मृगम्
9. अर्थशास्त्र, 2.24
10. इण्डियन आर्कियोलाजे : ए रिव्यू, 1954–55, पृ0 14
11. द्र0 पाण्डेय, राजबलि हिस्टोरिकल एण्ड लिटरेरी इनसक्रिप्शंस, पृ0 62–63
12. शिलालेख, 2, स्तंभ लेख 2 और 7
13. मिश्र, जी0एस0पी0, 1972, दि एज ऑफ विनय
14. इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू, (आई0ए0आर0)–1984–85, पृ0 90
15. पाचित्तिय, पृ0 145
16. अर्थशास्त्र, 2.35
17. अर्थशास्त्र, 2.15
18. आध्या, जी0एल0 1966, अर्ली इंडियन इकोनोमिक्स, पृ0 5
19. इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1974–75
20. सुत्तनिपात 962, धम्मपद, 5,239
21. आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, 16, पृ. 113
22. दीघ निकाय, 2.88, अर्थशास्त्र, 2.2, जातक, 1.320.